शिक्षकत्व की खोज

बिन्दुबेन

मैं स्कूल से लौटकर लेटी हुई थी जब किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी। पाँचवीं कक्षा का विद्यार्थी विजय और छठी कक्षा का विद्यार्थी राकेश दरवाजे पर खड़े थे। वे अन्दर आए और उन्होंने माँग की,

'बेन, हमें भाखरी खाना है।'

'नहीं, अभी नहीं, मैं बहुत थकी हुई हूँ', मैंने कहा।

'लेकिन बेन, हम आपकी मदद कर देंगे, बना दो न।' वे मुझे किचन में ले आए।

मैं जानती हूँ कि मुझे भाखरी बनाना बहुत अच्छा लगता है और उन्हें खाना! ऐसा कई बार हुआ है। मैंने सोचा, क्या बच्चों को मुझसे जबरदस्ती यह करवाने का हक है? वह कौन–सी बात है जिसने मुझे भाखरी बनाने के लिए मजबूर किया जबकि मैं बहुत थकी हुई थी? शायद इसकी वजह मेरी शिक्षा के समय मुझे मिला प्रशिक्षण है, शायद इसका कारण वह नई तालीम है जो मेरे अतीत का हिस्सा थी।

मेरी प्रारम्भिक शिक्षा और शिक्षकीय शिक्षा लोकभारती में हुई थी, जो नई तालीम का अनुकरण करने वाली एक पथ प्रदर्शक संस्था थी। मैंने अपनी माध्यमिक शिक्षा ग्राम दक्षिणामूर्ति, अम्बाला से पूरी की थी, जो नई तालीम का एक प्रसिद्ध उत्तर–बुनियादी स्कूल है और अब एक धरोहर बन चुका है। जब मैं विद्यार्थी थी तो मैंने अपनी पढ़ाई में मदद के लिए न तो कभी अलग से कोई ट्यूशन ली और न ही कोई अतिरिक्त किताबें लीं, जैसे गाइड वगैरह। यदि हमें पढ़ाई में कोई दिक्कत आती भी थी तो हम हमेशा अपने शिक्षक के घर चले जाते थे जो नई तालीम की सोच के मुताबिक स्कूल परिसर में ही स्थित होता था। शिक्षक के पास जाने पर वे कभी भी हमें हमारी दिक्कतों को दूर करने से मना नहीं करते थे। 'सजा' का शब्द तो उनके शब्दकोष में था ही नहीं। छात्रालय जीवन नई तालीम के ऐसे पहलुओं में से एक है जहाँ किसी किस्म का समझौता नहीं किया जाता। वहाँ हमने लोकतंत्र के बारे में सीखा जो हमारे समाज के लिए नई बात थी, क्योंकि इससे पहले तक तो हमसे जुड़े निर्णय हमेशा किसी और के द्वारा लिए जाते थे। छात्रालय में सहभागिता को बढ़ावा दिया जाता था।

नई तालीम इन बातों पर आधारित है :

1. आवासीय शिक्षा
2. उत्पादक कार्य करना व श्रम की गरिमा को समझना
3. मातृभाषा में शिक्षा
4. सहशिक्षा

आवासीय शिक्षा :

नई तालीम का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है उसकी रोजाना की दिनचर्या, जो दो भागों में बँटी होती है। पहला भाग तीन घण्टों का हो सकता है (सुबह 7 बजे से 10 बजे तक) और दूसरा भाग दोपहर 2 बजे से 5 बजे तक। सैद्धान्तिक शिक्षा के ये छह घण्टों के साथ विद्यार्थी कई और कार्य भी करते हैं जैसे छात्रालय में काम करना, खेलना, प्रार्थना और कई अन्य गतिविधियाँ जो रोज होने वाली शिक्षा को आत्मसात करने में मदद करती हैं।

लोकभारती में त्यौहार का समय, जिनके दौरान आमतौर पर छुट्टियाँ होती हैं, बहुत आनन्ददायी होता था क्योंकि हम सभी त्यौहारों को मिलकर मनाते थे। उत्तरायण के समय हम सब संस्था द्वारा दिए गए गन्ने खूब चाव से खाते थे। रक्षाबन्धन पर भी खूब मजा किया करते थे। वहाँ पर उत्सव वाकई में पावन दिन होते थे और उस समय लोक संगीत तथा नृत्य का आयोजन किया जाता था। यह सब करना इसीलिए सम्भव हो पाता था क्योंकि वह एक आवासीय स्कूल था।

स्कूल परिसर में हमारे 'माता–पिता' भी होते थे। छात्रालय में गुजारे समय के दौरान अरुणाबेन और रघुभाई मेरे माता–पिता थे। वे हमारी शिक्षा और कल्याण में लगभग हमारे असली माता–पिता जैसी ही रुचि लेते थे। यद्यपि वे भी हमारे मजे–मौज और मस्ती में शामिल होते थे लेकिन साथ ही वे हमारे व्यवहार को भी देखते थे और उसे सुधारने में हमारी मदद करते थे। वे हमें मजा करने का मौका तो देते थे, पर वे लोग पालकों की हैसियत से हमेशा हमारे प्रति सतर्क भी रहते थे। एक बार मैं एक परीक्षा में असफल हो गई। रघुभाई ने इसके बाद मुझे पढ़ाया और जब मुझे पूरे अंक आए तो वे मुझसे ज्यादा खुश थे।

मैं यहाँ पर मिलजुल कर किए गए हमारे कुछ सर्वाधिक दिलचस्प कार्यों का उल्लेख करना चाहूँगी। एक था 'खजाना नी शोध' या 'खजाने की खोज' और दूसरा था दोपहर का सामूहिक भोजन। ऐसी गतिविधियाँ एक समुदाय के रूप में हमारी भावनाओं को मजबूत करती थीं और इस तरह सामाजिक विकास का रास्ता खुलता था। खजाने की खोज का क्षेत्र बहुत विशाल होता था, कभी–कभी नौ से दस किलोमीटर का, जिसमें पहाड़ी इलाके भी होते थे और यहाँ खोजबीन करने में आधा दिन तक लग जाता था। जब हम लौटते थे, तो दिन का खाना तैयार होता था। हम अपने शिक्षकों के साथ बैठकर भोजन करते थे।

विद्यार्थी खुद भी खाना बनाते थे – नाश्ता, दिन का भोजन और रात का खाना। हमें उसके लिए सीमित राशि और सामग्री दी जाती थी और हमें उसके हिसाब से योजना बनाकर खुद अपना खाना बनाना होता था। रात का खाना सभी विद्यार्थियों, शिक्षकों और उनके परिवारों के साथ होता था। सभी इसमें शामिल होते थे और इस तरह खाना और भी स्वादिष्ट लगता था। आज हम इस बात को समझ पाते हैं कि यह समाज निर्माण की एक प्रक्रिया थी। नई तालीम सिर्फ एक प्रशिक्षण नहीं है, यह नागरिकों के सामर्थ्य निर्माण की प्रक्रिया भी है।

आज के स्कूल परीक्षा–उन्मुख हैं, न कि जीवन–उन्मुख। हालाँकि मेरा स्कूल परीक्षा–उन्मुख नहीं था, पर फिर भी हम परीक्षाओं के प्रति बहुत गम्भीर रहा करते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि हमें जो कुछ भी सिखाया जाता था वह हमारे जीवन के लिए था न कि सिर्फ पाठ्यचर्या के लिए। हम अपने पाठों को आम के या फिर चीकू के किसी पेड़ के नीचे बैठकर दोहराया करते थे और अपनी परीक्षाओं की बहुत गम्भीरता से तैयारी करते थे। हम बीच में सिर्फ खाना खाने के लिए वापस जाते थे। हमसे बड़े विद्यार्थी बहुत ज्यादा बातें करने वाले विद्यार्थियों के साथ बहुत सख्त रहते थे और वे लोग हमें सुबह जगाते भी थे। हमारी उस संस्था में कोई 'शिक्षक' नहीं थे – सारी चीजें हम लोग खुद ही करते थे।

परीक्षाओं के समय हमें हमारे परिसर के अन्दर किसी भी कक्षा में, कहीं पर भी बैठकर परीक्षा देने की छूट होती थी। यदि हमें कोई प्रश्न समझ नहीं आता, हम पूछ सकते थे। सत्र की अन्तिम परीक्षाओं के दौरान, जो गर्मियों में होती थीं, बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी हमारे अपने बड़े भाई–बहनों की तरह हमें बड़े प्यार से बर्फ डला नींबू का या सौंफ का शरबत दिया करते थे।

इस शानदार शिक्षा के बाद 1989 में मैं खुद एक शिक्षिका बन गई। शिक्षिका के रूप में मेरे जीवन के पहले 12 साल मैंने गुजरात के भावनगर जिले में बिताए। मैं बच्चों को स्नेह और सहयोग देने की कोशिश करती हूँ और उन्हें अपने बच्चों की तरह ही देखती हूँ। मुझे लगता है कि मैंने जो अपने 'परिवार' से पाया, वही मैं अपने विद्यार्थियों को भी दे सकती हूँ।

12 वर्षों की शिक्षा के बाद मुझे लगा कि अगर मैं अपने विद्यार्थियों को 'सम्पूर्ण'/समग्र शिक्षा देना चाहती हूँ तो उन्हें और मुझे साथ में रहना होगा ताकि शिक्षा को एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया बनाया जा सके। शादी के बाद मैं 300 लोगों वाले एक छोटे से गाँव में स्थित राजपुर स्कूल में काम करने लगी। पहले तो स्कूल पहुँचने के लिए मुझे रोज 23 किलोमीटर जाना पड़ता था। मैं गाँव में ही रहना चाहती थी पर ऐसा नहीं हो सका क्योंकि वहाँ सफाई की उपयुक्त व्यवस्थाएँ नहीं थीं। अब हमें यह सुविधा मिल गई है और हम गाँव में ही रहने लगे हैं। हालाँकि इस वजह से मेरे पति को उनके दफ्तर पहुँचने के लिए 50 किलोमीटर जाना पड़ता है, पर उन्होंने मेरे सपने के लिए खुशी–खुशी इसे स्वीकार कर लिया।

राजपुर प्राथमिक स्कूल एक 'सामान्य' प्राथमिक सरकारी स्कूल है। वहाँ ऐसा कुछ भी खास नहीं है, सिवाय इस बात के कि नई तालीम की विद्यार्थी होने के नाते मैंने यहाँ अपने सिद्धान्तों को लागू करना शुरू किया है। हम गाँव को

भली–भाँति जान गए हैं। यहाँ के लोगों में अन्धविश्वास है, शराब पीने जैसी बुरी आदतें हैं। मुझे लगा कि स्कूल से शुरुआत करते हुए मुझे गाँव में सुधार लाने की कोशिश करना चाहिए, क्योंकि स्कूल ही वह जगह है जहाँ जीवन की नींव पड़ती है।

अधिकांश ग्रामीण लोग यह मानते थे कि अगर कोई बीमार हो जाता है, तो उसे भगवान के सामने मन्नत माँगना चाहिए पर कोई दवाइयाँ नहीं लेना चाहिए। ऊँची बाल मृत्यु दर, ऊँची शिशु मृत्यु दर और माताओं की खराब सेहत यहाँ की प्रमुख समस्याएँ हैं। यहाँ तक कि भैंसें भी इस तरह के अन्धविश्वासों के कारण खतरे में पड़ जाती हैं। हमने लोगों को ग्लूकोज और कुछ फल देकर शुरुआत की। हमने यह कहना भी शुरू किया "भगवान से मन्नत माँगने के साथ–साथ चलो हम दवाइयाँ लेना भी शुरू करें।" हम जो परिणाम चाहते थे वे हमें मिल गए! लोगों को इससे लाभ हुआ। साथ ही साथ हमने स्कूल में साफ–सफाई और स्वास्थ्य पर ध्यान देना शुरू किया। नेल–कटर, कंघे और तौलिये हमारे प्रमुख उपकरण थे! बदलाव लाना बहुत आसान नहीं था पर गिजूभाई बधेका की पुस्तक 'दिवास्वप्न' को याद करके हम अपने सन्देश को फैला पाने में सफल हुए। हमने विद्यार्थियों के कपड़े सिलना भी शुरू किए। उन्हें उनकी कमीजों पर बटन टाँकना सिखाया। हमने स्कूल परिसर को साफ करके वहाँ पेड़ लगाए और अब दो साल बाद, सभी विद्यार्थियों का स्वास्थ्य पहले से बहुत सुधर गया है और स्कूल से नदारद रहने की घटनाएँ लगभग न के बराबर होती हैं।

गाँवों में बकरों की कुर्बानी देना बड़ी आम बात है। हालाँकि मुझे यह बात पता है कि पूरा गाँव माँसाहारी है और मैं माँसाहार के खिलाफ नहीं हूँ, लेकिन मुझे लगा कि जानवरों की बलि देना एक अन्धविश्वास है और अपना विरोध प्रदर्शन करने के लिए मैंने एक दिन का उपवास रखा। गाँववाले इस बात से सकते में थे पर उन्होंने मेरी बात मानी। तो गाँव में सार्वजनिक रूप से होने वाला बलिदान तो बन्द हो गया लेकिन लोगों ने अपने–अपने घरों में पशुओं की बलि देना जारी रखा। कुछ और उपवासों के बाद, अन्ततः उन्होंने बलि देना बन्द कर दिया और अब वे किसी भी उपलक्ष्य में पशु हत्या करने के बजाय कोई मिठाई बना लेते हैं।

नई तालीम ने ही मुझे सृजनात्मक ढंग से सोच पाना सिखाया। सोचने की इस प्रक्रिया से मुझे कई मामलों में मदद मिली। हमारे गाँव में बाल विवाह एक बड़ी चुनौती है। यहाँ 8 से 10 साल की उम्र की लड़की की शादी हो जाना बड़ी आम बात है, हालाँकि उसका वैवाहिक जीवन लगभग 14–15 की उम्र हो जाने पर शुरू होता है। हम सब जानते हैं कि समय से पहले विवाह करना न केवल कानून के खिलाफ है बल्कि इसकी वजह से कम उम्र में बच्चा पैदा हो जाने से बहुत–सी स्वास्थ्य समस्याएँ सामने आती हैं। शिक्षिका होने के नाते मैं यह भी जानती हूँ इसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाले बच्चों को जन्मजात सीखने सम्बन्धी कठिनाइयाँ हो सकती हैं, विवाहेत्तर सम्बन्ध और दूसरी सम्बद्ध समस्याएँ पैदा होती हैं। उदाहरण के लिए मुझे एक ऐसे मामले में पड़ना पड़ा जब सातवीं कक्षा की एक छात्रा की शादी की जाने वाली थी। हालाँकि उसके माता–पिता मेरी बात से सहमत थे फिर भी वे उस शादी को रोक नहीं सकते थे क्योंकि वह एक 'शृंखला' का हिस्सा थी। उसकी शादी तो हो गई पर अपने ससुराल वालों के सहयोग से वह दसवीं कक्षा तक तो हमारे गाँव में ही बनी रही। इस तरह का यह कोई अकेला मामला नहीं है। कम उम्र में शादी की प्रथा एक सामाजिक बुराई है और यह तभी दूर होगी जब पूरा समाज इसके लिए सहमत हो जाए।

मैंने पहले ही अन्धविश्वासों का जिक्र किया है। उदाहरण के लिए, अगर कोई व्यक्ति कोई गलत काम कर देता है तो वह ऐसा दिखाने लगता है/ लगती है जैसे कोई आत्मा उसके शरीर में घुस गई है और दरअसल वह आत्मा ही गलत काम कर रही है। फिर ऐसे व्यक्ति को किसी भूवा (ओझा) के पास ले जाया जाता है और उस आत्मा को भगाने के लिए तमाम तरह की चीजें खरीदी जाती हैं। हमने अपने स्कूल में बच्चों के साथ इस पर चर्चा की है और बच्चों को यह बात समझ में आती है कि इन बातों में कोई सच्चाई नहीं है।

अब कुछ बात रचनात्मक कार्यों के बारे में। हम सब इस बात को समझते हैं कि इन तमाम कुरीतियों की जड़ गरीबी है और किसी भी परिवार में बदलाव लाने के लिए स्त्रियाँ ही सबसे बेहतर माध्यम होती हैं। तो हमने इस गाँव में एक स्वयं सहायता समूह शुरू किया है और साथ ही विद्यार्थियों का एक बैंक खोल दिया है। आज हमारे इस स्वयं सहायता समूह के पास दो लाख रुपए से ज्यादा इकट्ठे हो चुके हैं तथा विद्यार्थियों के बैंक में एक लाख से कुछ कम रुपया इकट्ठा हो चुका है। अब अपने परिवारों में इन महिलाओं की भी आवाज है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गई हैं।

लोकतंत्र किसी भी समाज की सबसे बड़ी पूँजी होती है और लोकतंत्र की बुनियाद स्कूल ही है। हमने स्कूल में विद्यार्थियों की एक परिषद शुरू की। हर वर्ष सभी विद्यार्थी इस परिषद के लिए छह या सात विद्यार्थियों को चुनते हैं। फिर पूरे स्कूल का प्रबन्धन इन विद्यार्थियों के हाथ में ही रहता है। हमने स्कूलों में होने वाले कामों को तय कर दिया है जैसे स्कूल की साफ–सफाई, पीने के पानी की व्यवस्था, प्रार्थना करवाना, मेहमानों की देखभाल, स्कूल के बगीचे का रखरखाव इत्यादि। ये सभी काम विद्यार्थियों द्वारा ही देखे जाते हैं और उनके पास निर्णय लेने का अधिकार होता है। उदाहरण के लिए क्या स्कूल का अपना एक–सा परिधान होना चाहिए और अगर हाँ तो किस तरह का? विद्यार्थी परिषद की इस योजना से हमें गाँव में भी बहुत लाभ हो रहा है। स्कूल में हमारे काम करते रहने के 12 साल बाद हमारे कई पूर्व विद्यार्थी अब बड़े हो गए हैं और गाँव के निर्णयकर्ता भी बन गए हैं। निर्णय लेने की उनकी प्रक्रिया लोकतांत्रिक होती है और उसमें गाँव के सभी लोगों का मत लिया जाता है। लोकतंत्र की भावना के अन्तर्गत ही हम बाल अदालत की योजना भी लागू करते हैं। स्कूल और घरों में ऐसी कई छोटी–मोटी समस्याएँ होती हैं जो हो सकता है हमें बहुत बड़ी न मालूम पड़ें लेकिन बच्चों के लिए वे बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। समस्याओं को लिखकर एक बक्से में डाल दिया जाता है तथा हर बुधवार को प्रार्थनाओं के स्थान पर, बाल अदालत का सत्र आयोजित किया जाता है। इस बाल अदालत में विद्यार्थी परिषद के दो सदस्य, स्कूल के बाकी विद्यार्थियों में से दो बच्चे और एक शिक्षक शामिल किया जाता है। इससे हमें बच्चों को शिक्षित करने का मौका मिल जाता है जिन्हें वाकई मार्गदर्शन की जरूरत होती है।

और अन्त में, छात्रावास में न रहने वाले विद्यार्थी भी नई तालीम का हिस्सा हैं – स्कूल के घण्टों के बाद वे या तो स्कूल में ही रुक जाते हैं या फिर हमारे घरों में। ऐसा करना उनकी पसन्द है और हमें इसमें मजा आ रहा है!

बिन्दुबेन एक शासकीय प्राथमिक स्कूल की शिक्षिका हैं। वे राजपुर प्राथमिक स्कूल में काम करती हैं। 1989 से वे इस स्कूल के साथ जुड़ी हुई हैं। वे लोकभारती संसार में पैदा हुईं और पली बढ़ीं। वे पाठ्यपुस्तकों के लेखन व उनकी समीक्षा के कार्य में पिछले एक दशक से भी ज्यादा समय से लगी हुई हैं। 2006 में उन्हें सर्वश्रेष्ठ शिक्षक का पुरस्कार (चित्रकूट पुरस्कार) दिया गया था। अभी हाल ही में, शिक्षा के माध्यम से गाँव के विकास में अपना योगदान देने के लिए उन्हें नई तालीम, वर्धा की ओर से 'माँ–बाबा' पुरस्कार दिया गया था। उनसे parthesh.pandya@ceeindia.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।